ISSN : 2454-308X
Volume : 03
Issue : 05

INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
REFEREED | PEER REVIEWED

July - September 2017

कबीर के साहित्य में सामाजिक भेद भाव का विरोध: नारी के प्रति दृष्टिकोण एवं दुर्गुणों का त्याग का महत्व

Seema
Research Scholar,
Dept. of Hindi
M.D. University,
Rohtak (HR) .INDIA

ABSTRACT

कबीर जिस युग में पैदा हुए थे, वह मुस्लिम काल था. वे जिस जुलाहा जाति में पले-बढ़े थे, वह एक दो पीढ़ी पहले मुसलमान हो चुकी थी लेकिन न केवल कबीर की जुलाहा जाति बल्कि हिन्दू समाज की जो भी दलित जातियाँ इस्लाम स्वीकार कर चुकी थी, उनके पुराने संस्कारों, रीति रिवाजों और धार्मिक- विश्वासों में अधिक बदलाव नहीं आया था. वे जातियाँ न पूरी तरह हिन्दू थी और न पूरी तरह मुसलमान. स्वयं कबीर की जुलाहा जाति में, जो इस्लाम कबूल करने के पहले नाथपंथी जोगी(योगी) जाति थी, नाथ पंथ और हठयोग की बहुत सारी बाहें पहले की तरह सुरक्षित थी. हिन्दू-समाज में इस प्रकार की दलित जातियों का स्थान बहुत नीचा था और ये ऊची जातियों के भेद-भाव और अन्याय-अत्याचार का शिकार थी. इसलिए इनमें सामाजिक असमानता के प्रति विद्रोह का भाव होना स्वाभाविक था.

KEYWORDS : सीखना , अवधारणा, प्रकृति।

परिचय : कबीर बचपन में ही सामाजिक भेद-भाव और छुआछूत से अच्छी तरह परिचित हो गये थे क्योंकि बालक कबीर का "खतना" करने से मौलवियों ने इनकार कर दिया था. मुसलमानों का एक वर्ग कहता था कि पहले कबीर को "कलमा" पढ़ाकर उसका 'हरामीपन' खत्म किया जाए, फिर 'खतना' किया जाए लेकिन दूसरा प्रभावशाली मुस्लिम वर्ग यह मानता था कि 'नफइता' (अवैध) बच्चा कभी सच्चा मुसलमान नहीं बन सकता. कबीर को न ही मुसलमान माना गया और न बनाया गया. हिन्दू उनसे मुसलमानों जैसा बरताव करते थे. इस दोहरे भेदभाव ने कबीर को एक ऐसा आदमी बनाया , जो सभी धर्मो से परे था.

सामाजिक भेद भाव का विरोध

मुसलमानों के भारत में आगमन से पूर्व ही हिन्दू समाज में जाति-पाँति और छुआछूत की भावना एक सामाजिक कोढ़ की भाँति व्याप्त थी किन्तु अधिकांश सामाजिक बुराइयाँ इस्लामी संस्कृति की ही देन हैं. मुसलमान नारी को विलास का साधन मानते थे. उनके भारत में बसने के बाद रनिवासों का आकार बढ़ने लगा और नारियों का सामाजिक सम्मान कम होने लगा. उनकी कामुकता ने ही सती-प्रथा को जन्म दिया क्योंकि भारतीय नारियों के सामने विजेता दरिंदो से अपने सत्तीत्व की रक्षा करने के लिए सती प्रथा अथवा जौहर के अलावा दूसरा रास्ता ही नहीं था. परदे की प्रथा, बाल विवाह और यहाँ तक कि वैश्यावृत्ति भी मुस्लिम सैनिकों की कामुकता का ही परिणाम था, जो कभी-कभी शासकों की कठिनाई व

ISSN : 2454-308X
Volume : 03
Issue : 05

INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
REFEREED | PEER REVIEWED

July - September 2017

चिंता का विषय भी बन जाती थी. यह सही है कि मुसलमानों में भी शिया , सुन्नी, पठान, शेख़, सैय्यद, पीर, मीर, मुल्ला, कुरैशी, मोमिन-अंसार आदि अनेक वर्ग थे , जिनमें अंतरजातीय विवाह नहीं होते , फिर भी हिन्दुओं जैसी जातीय कट्टरता इनमें नहीं थी क्योंकि इनमें छुआछूत खाने-पीने, हुक्का-पानी पवित्र अपवित्र आदि का भेद भाव नहीं था. इतना अवश्य था कि सैय्यदों को ब्राह्मणों की भाँती मुस्लिम समाज में उच्च समझा जाता था लेकिन हिन्दू-समाज की भांति जाति-पाँति का भेद नहीं था.

हिन्दू और मुस्लिम समाज में अत्यधिक भेद भाव था. जहाँ ब्राह्मण स्वयं को पवित्र एवं श्रेष्ठ मानने में गर्व महसूस करते थे वहीं मुसलमान भी स्वयं को अपने धर्म के प्रति अत्यंत कट्टर और शक्तिशाली समझते थे. एक ओर जहाँ हिंदू मुसलमानों को म्लेच्छ समझते थे तो मुसलमान उन्हें काफिर मानते थे. दोनों ही अपने धर्म की रुढियों और अपनी परम्पराओं का अंधानुसरण करने में एक दुसरे से बढ़ कर थे. दोष किसी धर्म , वर्ग या जाति विशेष का नहीं था , दोष था धार्मिक एवं सामाजिक ठेकेदारों का जो निर्दोष जनता को बहकाकर विद्वेष और संघर्ष के रास्ते पर चलने के लिए उद्यत करते थे इसका दुष्-परिणाम यह था कि जातिवाद, छुआछूत की मानसिक प्रवृत्ति ने पूरे भारतीय समाज को एक ऐसे बारूद के ढेर पर ला खड़ा कर दिया था जहाँ ज़रा सी चिंगारी लगते ही पूरा समाज संघर्ष की प्रचंड अग्नि में जलने लगता था. ऐसे समय में कबीर ने धर्म और समाज के ठेकेदारों पर तीक्ष्ण प्रहार किया. हिन्दुओं की अपेक्षा मुस्लिम समाज की आर्थिक स्थिति अच्छी थी इसलिए निष्क्रियता के साथ साथ मांस-मदिरा सेवन , पर-स्त्री गमन, द्युत-क्रीड़ा, छल-कपट, नृत्य-गायन आदि इनके जीवन के प्रधान अंग बन गये , जिनमें धन पानी की तरह बहाया जाता था. सामाजिक कुरीतियों से मिलते-जुलते कुछ सामाजिक संस्कार भी प्रत्येक समाज में व्याप्त थे. वास्तव में , हर समाज में संस्कार के नाम से कुछ ऐसी क्रियाएं या विधियाँ अपनाने पर ही किसी व्यक्ति को सम्बंधित समाज का स्थायी सदस्य माना जाता था , जैसे- हिन्दू-समाज में गर्भाधान से लेकर दाह संस्कार तक अनेक संस्कारों का विधान है. उसी प्रकार मुस्लिम-समाज में भी अनेक संस्कारों की स्वीकृति पाई जाती है. इनमें से अधिकांश संस्कार तो सामाजिक व्यवस्था के अंग थे , जिनसे किसी भी सम्प्रदाय को असहमति नहीं हो सकती थी जैसे- विवाह/निकाह और दाह संस्कार/दफ़न करना आदि किन्तु कुछ संस्कार सांप्रदायिक विशेषता के द्योतक माने जाते थे जैसे ब्राह्मणों का उपनयन (जेनूऊ) संस्कार और मुसलमानों का खतना या सुन्नत आदि निश्चय ही सामाजिक भेद-भाव के कारण थे. सांप्रदायिक भावना के पोषक , संकुचित दृष्टि वाले इन संस्कारों के कारण हिन्दू-मुस्लिम समाज में अनेक बार संघर्ष तक हो जाते थे.

कबीर ने सामाजिक भेद-भाव का तीव्र विरोध किया और हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मावलम्बियों को खरी- खोटी सुनाई, जहाँ एक ओर हिन्दुओं को फटकारा वहीँ दूसरी ओर मुसलमानों पर भी करारी चोट की-

"अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करे बड़ाई गगरी छूवन न देई।
वेश्या के पायन पर लोटत यह देखी हिन्दुवाई।
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी-मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहे घर में करे सगाई।।"

हिन्दू मुसलमान दोनों को खरी-खोटी सुनाने के बाद उन्होंने सच्चे हिन्दू-मुसलमान, क़ाज़ी, मुल्ला, शेख़, योगी-यती, ब्राह्मण-क्षत्रिय की पहचान भी बताई है-

"सो हिन्दू सो मुसलमान, जाका दुरुस रहे ईमान।
सो मुलना जो मन सू लरौ, एहम निसि काल चक्र सू भिरें
काजी सो जो काया बिचारें,एहम निसि ब्रह्म अगानि प्रजारें।"

सच्चा ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म का ज्ञान प्रदान करे , क्षत्रिय वह है जो भयंकर जीवों से मानव-मात्र की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करे और कामदेव रूपी राजा से युद्ध कर उसे परास्त करे. अंत में उन्होंने सभी को समझाने का प्रयत्न किया है कि जाति-पाति, ऊँच-नीच का भेद-भाव झूठा है. जब जगत नियंता ने सबको समान रूप से बनाया है तो इस प्रकार का सामाजिक भेद-भाव निश्चय ही मानवता के लिए कलंक है.

ISSN : 2454-308X
Volume : 03
Issue : 05

INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
REFEREED | PEER REVIEWED
July - September 2017

नारी के प्रति दृष्टिकोण:-

समाज में नारी की स्थिति के बारे में प्राय: यह आदर्श कथन सुनने को मिलता है-

"नारी की भारी है जग में कहानी, अगर नारी चाहे तो फैला दे ज्वाला।
वही नारी है लक्ष्मी दुर्गा भवानी,वही नारी है जिसने जगत को पाला।।"

अर्थात इस सृष्टि की रचना में नारी का बहुमूल्य योगदान स्वीकार किया जाता है. वास्तव में, नारी समाज का एक अविभाज्य अंग है. इसलिए प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में उसका एक निश्चित स्थान होता है. मध्काल में हिन्दू और मुस्लिम दोनों समाजों में नारियां अपने पतियों अथवा सम्बंधित अन्य पुरुषों-पिता, भाई- पुत्र आदि पर आश्रित थी. पुरुष चाहे कितने की कामी और लम्पट क्यों न हों किन्तु स्त्री से चारित्रिक पवित्रता की अपेक्षा दोनों समाजों में की जाती थी. धनी-वर्ग और राज-घरानों को छोड़ कर नारी शिक्षा की कोई विशेष व्यवस्था उस युग में नहीं थी. सती-प्रथा , बहु-पत्नी प्रथा, पर्दा-प्रथा, दहेज़-प्रथा, बाल-विवाह, कुछ परिवारों एवं जातियों में लड़कियों की बाल-हत्या का प्रचलन, शासक-वर्ग द्वारा नारी-अपहरण, कौमार्यावस्था में ही किसी की वासना का शिकार हो जाना, वेश्यावृत्ति का प्रचलन, मीना बाज़ारों में उनका क्रय-विक्रय आदि तत्कालीन नारी-जीवन की प्रमुख विकृतियां थी. राजा- प्रजा के नैतिक पतन के उस युग में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी. नारी का भोग्या रूप ही पुरुषों की कामुक दृष्टि में अधिक था. अतः कबीर के समय में नारी अपेक्षाकृत हीनतर अवस्था में थी.

उस समय सामाजिक स्थितियाँ ऐसी नहीं थीं कि नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की कल्पना की जाती, फिर भी पारिवारिक ढाँचे में उसके ऊँचे मानवीय स्थान की परिकल्पना सभी ने की. कबीर के सामने माता ,पत्नी और पुत्री तीनों रूपों में नारी उपस्थित थी, फिर भी उन्होंने जो नारी विषयक निन्दा की है , उसका कारण नारी का व्यभिचारिणी रूप ही प्रतीत होता है-

'नारी की झाई परत अंधा होत भुजंग। कबीर तिनकी क्या गति, जो नित नारी संग।।"

इतना ही नहीं-

'पर नारी पर सुंदरी, बिरला बंचै कोइ। खाता मीठी खांड सी, अंत काल विष होइ।।'

कबीर ने स्वीकार किया है कि सांसारिक माया-जाल में फँसकर उन्होंने भी नारी का साथ किया अर्थात विवाह किया-

'नारी तो हमहू करी, पाया नहीं विचार।
जब जानी तब परिहरी, नारी बड़ा विकार।।'

तत्कालीन समाज की सोच के अनुरूप ही कबीर को भी नारी का पतिव्रता रूप ही मान्य था और उसके इस रूप पर वे अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तैयार थे-

'पतिव्रता के रूप पर वारूँ कोटि सरूप।'

दुर्गुणों का त्याग

मानव को उच्च बनाने से पूर्व उसके दुर्गुणों को नष्ट करना आवश्यक होता है क्योंकि अवगुणों के त्याग के पश्चात् मानव-हृदय निर्मल हो जाता है और सद्गुणों को ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है. कबीर ने समाज के प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत विकारों का त्याग करने का उपदेश दिया है, उनमे से मुख्य निम्नलिखित हैं-

काम- सामाजिक दृष्टि से काम अत्यंत हेय माना जाता है क्योंकि जब व्यक्ति काम-वासना में अंधा हो जाता है तो उसे अपने पराये की सुधि भी नहीं रहती. कामी व्यक्ति पर भरोसा नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसा व्यक्ति कहीं भी, किसी समय अपने रास्ते से फिसल जाता है. आजकल बलात्कार की घृणित घटनाएं इसका ज्वलंत उदाहरण हैं. एक ही कामी व्यक्ति का पतन अन्य अनेक व्यक्तियों की मानसिक अशांति का कारण बनता है. कबीर ने अपने युग में चारित्रिक पतन को देखा और

उनकी आत्मा रोष से भर उठी. उन्होंने विचार व्यक्त किया कि 'स्व नारी' या 'पर नारी' किसी में भी अति आसक्ति गिरावट की सूचक है, इसलिए काम, कामी-नर और कामी-स्त्री सभी घृणित एवं हेय हैं.
जिस प्रकार कीड़ा लकड़ी को खोखला कर देता है और जंग लोहे को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार काम मुनष्य को अन्दर ही अन्दर खोखला करके समाप्त कर देता है क्योकि ये तन और मन दोनों को व्यथित कर देता है, चित्त को डावांडोल कर देता है और धर्म-शर्म दोनों की तनिक परवाह नहीं करता.काम की कुत्सित भावना मनुष्य को समाज के लिए अनिष्टकारक अवश्य है किन्तु यदि उसकी प्रवृत्ति परिवर्तित कर दी जाए तो वह समाज के लिए लाभप्रद भी हो सकता है क्योंकि जब तक कामवृत्ति बहुर्मुखी रहती है तन तक वह व्यक्ति भक्ति एवं सामाजिक शांति में बाधक रहता है, जब उसे अंतर्मुखी कर दें तो वही साधक तत्त्व बन जाता है. काम में अदमनीय शक्ति होती है , जो इसे अपने नियंत्रण में क्र लेता है , वह किसी भी प्रकार की साधना में सफल हो सकता है, यहाँ तक कि प्रभु की प्राप्ति भी हो सकती है।

REFERENCES :

1. कबीर ग्रंथावली –सं० बाबू श्यामसुन्दरदास
2. कबीर ग्रंथावली –सं० माता प्रसाद गुप्त
3. संत काव्य –सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
4. कबीर के काव्य में सांप्रदायिक सद्भाव (लघु-शोध प्रबंध)- राजेन्द्र प्रसाद